काले साये से जकड़ा रहा प्रेस

अंग्रेजी राज के दमनकारी कानूनों से सूचना प्रवाह को आजाद करने की जरूरत

आलोक मेहता

आजादी के 58 वर्षों बाद भी देश के कुछ राज्यों में प्रेस को काबू में रखने के लिए सत्ताधारी नेता हर संभव प्रयास करते रहते हैं। दिल्ली में बैठे नामी संपादकों-पत्रकारों को बड़े खतरे नहीं झेलने पड़ते, लेकिन प्रादेशिक राजधानियों या कस्बों में ईमानदार आलोचनात्मक पत्र-पत्रिकाओं और पत्रकारों का गला घोटने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते। इस दृष्टि से स्वाधीनता दिवस पर यह याद दिलाना उचित लगता है कि ब्रिटिश राज का प्रेस पर दमन का सिलसिला कितना भयावह था।

समाचार पत्रों के बढ़ते हुए प्रसार और प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए भारत में सबसे पहले लॉर्ड वेलेस्ली ने प्रेस विरोधी कानून 13 मई, 1799 को प्रेस संबंधी विशेष नियमों के रूप में लागू किया। ये नियम इस प्रकार थे: प्रत्येक समाचार पत्र के मुद्रक के लिए अपने समाचार पत्र के अंत में अपना नाम प्रकाशित करना अनिवार्य होगा, संपादक तथा संचालक अनिवार्यतः अपने नाम और पते की सूचना सरकार के सचिव को दें, रविवार को पत्र का प्रकाशन नहीं किया जाए तथा सरकार द्वारा मनोनीत अधिकारी के निरीक्षण से पूर्व समाचार पत्र का प्रकाशन नहीं किया जाए।

अनेक कानूनी नियंत्रणों के बावजूद भारतीय पत्रकारिता अपनी परिस्थितियों के अनुरूप अपनी धरती से जुड़कर, भारतीय परिवेश को आत्मसात करती हुई आगे बढ़ी तथा जन-जन की आशाओं और आकांक्षाओं का केंद्र बनी। राजा राममोहन राय का ही सामर्थ्य था कि जब ईसाई मिशनरियों ने भारतीय सांस्कृतिक वैभव तथा विशिष्टता पर प्रहार करने शुरू किए तो उन्होंने उनकी सांप्रदायिक नीति के विरोध में ब्राह्मनिकल मैगजीन के माध्यम से भारतीयों की मौलिकता व विशिष्टता को सुरक्षित रखने का प्रयास किया।

भारतीय पत्र और पत्रकारों ने जब जनता की वाणी, आकांक्षाओं और दर्द को अभिव्यक्ति देना प्रारंभ किया तो ब्रिटिश अधिकारी उसे सहन नहीं कर सके और 'स्वतंत्र प्रेस' की धारणा को स्वीकार नहीं किया। प्रेस पर लागू नियंत्रणों के कारण समाचार पत्र प्रकाशन में तेजी न आ सकी। वेलेस्ली को जब महसूस होने लगा कि कुछ समाचार पत्र अपने प्रूफ समय पर जांच के लिए नहीं भेजते हैं तो उसने 22 मई सन् 1801 को नए आदेश में इसकी अनिवार्यता बताई। समाचार पत्रों में जब सैनिक गतिविधियों तथा अन्य प्रतिबंधित संदर्भों के समाचार छपने लगे तो प्रेस पर कठोर नियंत्रण लागू किए जाने लगे। इसका स्वाभाविक परिणाम हुआ- भूमिगत प्रेस का उदय। चोरी-छिपे पैंफलेट आदि का प्रकाशन करके सरकार का विरोध किया जाने लगा। मिशनरियों ने ऐसे पत्रों में हिंदुओं और मुसलमानों की धार्मिक मान्यताओं तथा आस्थाओं पर भी अनेक प्रहार किए।

सन् 1807 में लॉर्ड मिंटो ने गवर्नर जनरल का पद संभाला और सीरामपुर मिशनरियों की गतिविधियों को नियंत्रित करने के विशेष प्रयास किए। मिंटो ने आदेश दिया कि वे अपने प्रिंटिंग प्रेस कलकत्ता में स्थानांतरित करें। किंतु वित्तीय हानि को देखते हुए मिशनरियों ने पूर्व सेंसरशिप का वादा कर लिया। सन् 1813 में गवर्नर जनरल बना लॉर्ड हेस्टिंग्स अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा प्रेस के प्रति अधिक उदार था। कलकत्ता जर्नल के संपादक डॉ. जेम्स ब्राइस ने 'प्रेस सेंसरशिप' का कड़ा विरोध किया जिसके कारण 1818 में सेंसरशिप हटा दी गई। नए आदेशों के बाद अचानक समाचार पत्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी।

मुख्य सेंसर अधिकारी के रूप में कार्य कर चुके जॉन ऐडम 1823 में कार्यवाहक गवर्नर जनरल बने। ऐडम तथा तत्कालीन अधिकारियों ने प्रेस की स्वतंत्रता को कंपनी के शासन के लिए खतरा माना। भारत में प्रथम प्रेस अधिनियम जारी करने का उत्तरदायी जॉन ऐडम ही है। इसके तहत बिना सरकारी स्वीकृति के कोई भी समाचार पत्र, पत्रिका, पुस्तक अथवा विज्ञप्ति प्रकाशित करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया जिसमें सरकारी नीति या कार्य पद्धति के संबंध में टीका-टिप्पणी हो। प्रकाशन संबंधी लाइसेंस प्राप्त करने के लिए प्रार्थना पत्र, पत्रिका, पुस्तिका या पैंफलेट के साथ प्रकाशक का नाम तथा पूरा पता देना जरूरी था। पत्र के मालिकों की संख्या दो से अधिक होने पर बड़े हिस्सेदार का पूरा ब्योरा देना जरूरी कर दिया गया। यह व्यवस्था आज 2005 में भी लागू है। प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना के बारे में भी नए नियंत्रण लागू किए गए। बिना लाइसेंस पुस्तकों या पैंफलेटों का प्रकाशन और प्रेस का उपयोग करने पर सौ रुपये जुर्माना तथा छह माह तक की सजा का प्रावधान किया गया। सरकार को ऐसे प्रेस जब्त कर लेने के भी अधिकार मिल गए। सरकार चाहे तो समाचार पत्रों या प्रेस को दिए लाइसेंस वापस भी ले सकती थी।

शेषांश पृष्ठ 29

लॉर्ड बैंटिक (1828-1835) का शासनकाल अपेक्षाकृत शांति और सौहार्द का काल था। राजा राममोहन राय के सहयोग से सती प्रथा बंद कराने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। प्रेस पर लगे नियंत्रणों को कम करने के कारण इस काल में समाचार पत्रों के प्रकाशन क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ। सन् 1835 में मेटकाफ गवर्नर जनरल बने और प्रेस को स्वतंत्र करने की दिशा में विशेष प्रयत्न की। 15 सितंबर, 1835 से उन्होंने लाइसेंस प्रणाली समाप्त करके समाचार पत्रों के स्वतंत्र विकास एवं प्रसार में अभूतपूर्व योगदान किया। इस कानून में कहा गया कि प्रत्येक व्यक्ति सामान्य कानूनों और नैतिक परिधि में रहते हुए किसी भी सार्वजनिक विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र होगा। पर मेटकाफ ने भी इस अधिनियम के तहत राजद्रोही, आपत्तिजनक तथा उकसाने एवं भड़काने वाले लेखन को प्रतिबंधित किया और इसके लिए भारी जुर्माने की व्यवस्था की।

सन् 1857 की क्रांति के समय तत्कालीन समाचार पत्र जनता की भावनाओं को प्रतिबिंबित कर रहे थे। ऐसे अनेक पत्रों का उदय इस दौर में हुआ जिन्होंने जनता की भाषा में अपनी बात कहते हुए राष्ट्रीय चरित्र प्रदान किया। भारतीय प्रेस का भी तेजी से विकास होने लगा। इसे देखते हुए लॉर्ड कैनिंग ने प्रेस को नियंत्रित करने की आवश्यकता महसूस की। 13 जून, 1857 को बिना पूर्व अनुमति के प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना और उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया। सरकार अपने विवेक से लाइसेंस प्रदान कर सकती थी अथवा रद्द कर सकती थी। लॉर्ड कैनिंग के ये नियंत्रण 'गलाघोंटू कानून' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सन् 1857 के संग्राम ने भारतीयों को आजादी नहीं दिलाई लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन भी समाप्त हो गया तथा ब्रिटिश सरकार ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। नवंबर 1858 में महारानी विक्टोरिया की घोषणा के साथ ही भारत के प्रशासन में भी परिवर्तन हो गया तथा लॉर्ड कैनिंग भारत के प्रथम वाइसराय बने। वाइसराय बनने के बाद उन्होंने प्रेस का समर्थन जुटाने का प्रयास किया। उन्होंने 'एडिटर्स रूम' की स्थापना की जहां पत्रकारों तथा सार्वजनिक रुचि की तुष्टि के लिए प्रमुख समाचार पत्र उपलब्ध कराए जाते थे। सन् 1860 में भारतीय दंड संहिता के अधिनियम पर विचार-विमर्श के दौरान लॉर्ड कैनिंग की सलाह पर धारा 113 को, जो राजद्रोह से संबंधित थी, हटा लिया गया। लगभग एक दशक बाद यह धारा पुनः जोड़ी गई।

गलाघोंटू कानून की अवधि बीतने पर सन् 1857 के बाद फिर समाचार पत्रों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। इस रफ्तार को रोकने तथा पत्रों की स्वतंत्रता पर नियंत्रण के लिए लॉर्ड लिटन ने भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों के लिए 1 मार्च, 1878 को विशेष अधिनियम पारित किया जो 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके द्वारा जिलाधीशों और पुलिस कमिश्नरों को अधिकार दिया गया कि वे अपने क्षेत्रों में प्रकाशित समाचार पत्रों के प्रकाशकों अथवा छापने वालों से यह मांग कर सकते थे कि वे अनुबंध पत्र पर हस्ताक्षर करके वादा करें कि ऐसा समाचार प्रकाशित नहीं करेंगे जिससे सरकार के प्रति असंतोष की भावना जगे। अनुबंध पत्र के साथ-साथ वे अधिकारी प्रकाशकों या छापने वालों से कुछ निश्चित धनराशि जमा कराने की मांग भी कर सकते थे। सरकार को अधिकार मिला कि यदि आपत्तिजनक सामग्री किसी अखबार में प्रकाशित हुई तो अनुबंध की रकम जब्त कर ले। इसके अतिरिक्त समाचार पत्रों के प्रकाशकों अथवा छापने वालों की सारी मशीनें अथवा अन्य वस्तुओं को भी जब्त किया जा सकता था। इसका जनता और समाचार पत्रों ने घोर विरोध किया। सन् 1880 में लॉर्ड रिपन वाइसराय के रूप में भारत भेजे गए। वह उदारवादी और सैद्धांतिक रूप से स्वतंत्र प्रेस के समर्थक थे। रिपन के शासनकाल में इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री ग्लैडस्टन की इच्छा के अनुसार इस ऐक्ट को रद्द कर दिया गया किंतु विद्रोहात्मक प्रकाशन को जब्त करने का अधिकार डाक अधिकारियों के पास सुरक्षित रहा।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद भारत में राजनीतिक चेतना का तेजी से विकास होने लगा और भारतीय पत्र स्वतंत्रता और अधिकारों की मांग का पुरजोर समर्थन करते हुए उन आकांक्षाओं के प्रतीक बन गए। 17 अक्टूबर, 1889 को अंग्रेजी सरकार ने एक कानून पारित कर राजकीय दस्तावेजों तथा सूचनाओं को प्रकट करने पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके अंतर्गत राजकीय दस्तावेज को अनधिकृत रूप से रखने अथवा अनधिकृत व्यक्ति को उसकी जानकारी देने पर एक वर्ष की जेल अथवा जुर्माना अथवा दोनों सजाएं देने का प्रावधान किया गया। किसी विदेशी एजेंट को ऐसी सूचनाएं अथवा दस्तावेज देने पर देश-निष्कासन अथवा दो से पांच वर्ष तक की जेल की सजा का प्रावधान था।

> इस दृष्टि से स्वाधीनता दिवस पर यह याद दिलाना उचित लगता है कि ब्रिटिश राज का प्रेस पर दमन का सिलसिला कितना भयावह था।

लॉर्ड एल्गिन के शासन काल में सन् 1896-97 में भारी अकाल पड़ा जिससे हजारों लोगों के प्राण चले गए। इस स्थिति में समाचार पत्रों ने एल्गिन के प्रशासन की खुलकर आलोचना की तथा सरकार की आर्थिक नीतियों के प्रति क्षोभ व्यक्त किया। इसी समय बंबई में प्लेग का प्रकोप हुआ तथा स्थिति संभालने के लिए सेना बुलाई गई। सेना ने पूना में घर-घर तलाशी लेना शुरू कर दी जिससे जनता में रोष उत्पन्न हो गया। सहायता कार्य में लगे दो ब्रिटिश सैनिकों की हत्या कर दी गई तथा जगह-जगह प्रदर्शन किए गए। केसरी के माध्यम से तिलक ने भी सरकार की कड़ी आलोचना की।

बढ़ती हिंसा के लिए सरकार ने समाचार पत्रों को उत्तरदायी ठहराया और एल्गिन ने भारतीय दंड संहिता में नई धाराएं जोड़ीं। सन् 1870 में पारित राजद्रोह अधिनियम की संख्या 27 की धारा 5 तथा धारा 124-ए में किए गए संशोधन के अनुसार सरकार या महारानी के विरुद्ध बोले या लिखे गए शब्दों या प्रतीकों अथवा छापन द्वारा असंतोष भड़काने की कार्रवाई को प्रतिबंधित किया गया। इसका उल्लंघन करने पर तीन वर्ष तक की जेल या जुर्माना या दोनों प्रकार की सजाएं दी जा सकती थीं। इन कानूनों की गिरफ्त में आने वाले पत्रों में मराठा और केसरी प्रमुख थे। उनके संपादक बाल गंगाधर तिलक को मुकदमे चलाकर कारावास की सजा दी गई।

उपरोक्त वृत्तांत से स्पष्ट है कि अंग्रेज सरकार ने भारतीय समाचार पत्रों को दबाए रखने का प्रयास किया किंतु स्वाधीनता आंदोलन तथा स्वतंत्रता प्राप्ति में भारतीय समाचार पत्रों के सक्रिय योगदान और निरंतर संघर्ष का विशेष महत्त्व है।

मजेदार बात यह है कि आजादी के 58 वर्षों बाद भी प्रेस के पंजीकरण, किसी प्रकाशन पर जिला प्रशासन द्वारा रोक लगाने, न्यायपालिका पर टिप्पणी को अवमानना की श्रेणी में रखने वाले कानून, शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 और साधारण सी कथित गोपनीय सूचना के सरकारी दस्तावेज के उपलब्ध होने पर कानूनी कार्रवाई के प्रावधान एवं मानहानि की परिभाषा करने वाली भारतीय दंड संहिता की धारा 499 में कोई खास परिवर्तन नहीं किया गया है। यह ठीक है कि ऐसे कानूनों के आधार पर दंडात्मक कार्रवाई कम होती है, लेकिन तलवार जरूर लटकी रहती है। इसलिए, अब सूचना के अधिकार कानून लागू होने के साथ भारतीय संसद को अन्य पुराने घिसे-पिटे कानून बदलने पर भी गंभीरता से विचार करना चाहिए। ●